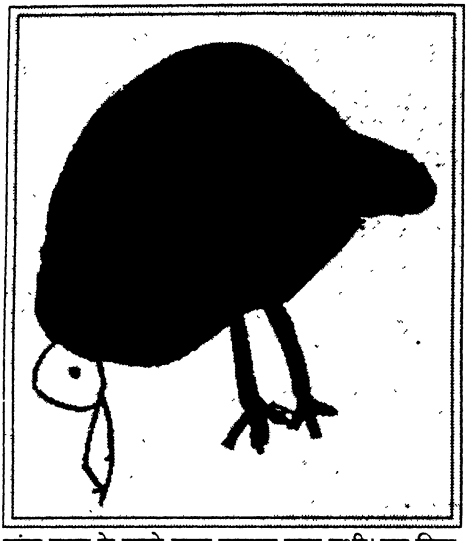

पांच साल के बच्चे द्वारा बनाया गया पक्षी। इस चित्र में बच्चे के दिमाग में अपने प्रतीक का आकार एकदम स्पष्ट था।

नकल क्यों नहीं?

देवी प्रसाद

आनिकेतन शाला के कार्यकर्त्ताओं की साप्ताहिक बैठक में 'बच्चों की कला' के बारे में चर्चा हो रही थी। एक साथी ने प्रश्न किया, "आप बच्चों को चित्र देखकर ड्राइंग क्यों नहीं करने देते?"

मैंने पूछा, "किन चित्रों को देखकर?"

"अच्छे-अच्छे चित्रों को। उन चित्रों को, जिनमें अनुपात वगैरह ठीक होता है। उन्हें देखकर अगर बच्चे चित्रकला का अभ्यास करें, तो जल्दी सीख सकेंगे और उनके चित्र भी अच्छे होंगे। आखिर कहते हैं न कि बच्चे तो अनुकरण से ही सीखते हैं।" साथी ने कहा।

मुझे याद आ गया स्वर्गीय फ्रांज़ सिज़ेक का यह वाक्य, "बच्चों की कला वही है जिसे बच्चा ही निर्माण कर सकता है। कुछ ऐसी भी चीज़ें हैं, जिन्हें बच्चा भी कर सकता है, लेकिन उसे हम कला नहीं कहते, वह नकल है, नकली है।"

यह वाक्य उन्हें तो नहीं दोहराकर सुनाया, लेकिन प्रश्न के उत्तर के लिए उसी वाक्य ने प्रेरणा दी।

बच्चों के बनाए चित्र भी स्व-अनुभूति द्वारा निर्मित हो सकते हैं इस बात पर यकीन करना थोड़ा मुश्किल ज़रूर है लेकिन यह एक सच्चाई है। बच्चा अपने आसपास के परिवेश को देखता है, उसे अनुभव करता है, उससे अंतर्क्रिया करता है और उसे अपने आकारों-प्रतीकों, रेखाओं, रंगों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है। समय गुज़रने के साथ बच्चे के अनुभव का दायरा बदलता जाता है तो उसकी अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन नज़र आने लगते हैं।

स्कूलों में चित्रकला के पीरियड होते हैं। इनमें बच्चों की अभिव्यक्ति को कलात्मक स्पर्श देने के नाम पर क्या कुछ नहीं हो रहा है। अच्छे चित्रों की नकल करवाकर अच्छे चित्रकार बनाने की कोशिशें हो रही हैं? क्या अच्छे चित्रों का यही मतलब है कि चित्र शोख रंगों वाले, वास्तविक, गणितीय अनुपात के हिसाब से बनाए गए हों! यदि अच्छे चित्रों से हमारा यह तात्पर्य नहीं है तो बच्चों को उनकी गति से, उनके अनुभवों से चित्र बनाने दीजिए। अच्छे चित्रों की नकल से हम बच्चों की अभिव्यक्ति को कुचलेंगे ही।

हां, सभी शिक्षा -शास्त्री कहते हैं कि बच्चे तो अनुकरण से ही सीखते हैं। लेकिन जब सोचता हूं कि उस बात को आम शिक्षक किस मायने में लेता है, तो जी चाहता है कि कहूं कि गलत है वह विचार। वह यह भूल जाता है कि बच्चा एक स्वतंत्र प्राणी है, अनुकरण करने का यंत्र नहीं। वह तोता नहीं है। बच्चा अपने में परिपूर्ण व्यक्ति है। यह ख्याल कि बच्चा सयाने का अपूर्ण स्वरूप है, गलत है। आजकल तो वैज्ञानिक मानते हैं कि बच्चा एक 'नन्हा सयाना' (मिनियेचर एडल्ट) नहीं है। बच्चा ऐसे बड़ा नहीं होता है, जैसे सयाना बड़ा होता है और बच्चा न ही उस जगत में रहता है, जिसमें सयाना। इसलिए उसकी प्रवृत्तियां भी बड़ों की प्रवृत्तियों से अलग तरह की होती हैं और होनी भी चाहिए। यही बात है चित्रकला में नकल करने की भी। सयानों को शायद नकल द्वारा सिखाना पड़ता हो, लेकिन बच्चों को

नकल से दूर ही रखना चाहिए।

नकल का अभ्यास कराने से बच्चे के अंदर जो है, वह प्रकाश नहीं पाता और न ही वह प्रकट हो पाता है। नकल का मतलब है कि वह सयानों के जगत में प्रवेश करे। ज़ोर-जबर, बहलाव या किसी भी परिस्थिति के कारण भले ही बच्चा सयानों के चित्रों जैसा चित्र बना ले, लेकिन जैसा सिज़ेक ने कहा है कि 'वह स्वाभाविक नहीं होगा, नकली होगा।'

अनुभूतियां और अभिव्यक्ति

बच्चा जो चित्र बनाता है या चित्रकार भी जो चित्र बनाता है वह उसके अंदर की अनुभूति द्वारा निर्मित होता है। दूसरों की आंखों देखा नहीं, खुद देखा, खुद महसूस किया हुआ। बच्चा इस जगत को जैसे देखता है, जैसा उसे उसका अनुभव होता है और जिस तरह की प्रतिक्रियाएं उसके अंदर होती हैं, उन सबको लेकर उसके दिमाग में आकारों का निर्माण होता है। यह उसका बाहरी जगत का ज्ञान होता है, जिसका आत्म प्रकटन वह चित्रकला द्वारा करता है। वह इन आकारों द्वारा प्रकाश पाता है। यह आकार ही उसकी चित्र भाषा की बारहखड़ी होती है। इसलिए जो चित्र वह अपनी भाषा द्वारा बनाता है, वह उस भाषा के मापदंड के हिसाब से ठीक होते हैं। चित्र अच्छा बना या गलत, यह कहने का अधिकार उसी व्यक्ति को है, जो बच्चे की इस 'चित्र भाषा' से परिचित है। एक भाषा वाला व्यक्ति अगर दूसरी भाषा के वाक्य की रचना की परख अपनी भाषा के व्याकरण से करे और कहे कि वाक्य रचना गलत है, तो अन्याय करेगा। बच्चे की आकार की भाषा बनती है, उसके पूर्ण व्यक्तित्व के अनुभव द्वारा। और सयाने के आकार की भाषा अक्सर केवल आंख के अनुभव से बनती है। ये दोनों निराली हैं। इनकी एक-दूसरे के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

बच्चा जो 'जानता' है, उसका चित्र बनाता है और सयाना जो 'देखता' है उसका। इसलिए बच्चा अगर ऐसा चित्र बनाए, जो सयाने के चित्र जैसा हो, तो स्वाभाविक नहीं होगा। व्यक्ति किशोर-अवस्था पार करने के बाद ही सयाने के जैसा देखना शुरू करता है। अगर उस अवस्था में पहुंचने के पहले ही बालक को उसमें प्रवेश करने के लिए बाध्य किया जाएगा, तो यह अन्याय होगा और बालक के स्वाभाविक विकास में बाधारूप होगा।

आकारों की बदलती भाषा

पहले ही कहा गया है कि बालक की आकारों की भाषा अपने ही निराले ढंग की होती है। वे आकार केवल आंख से दिखने वाले आकारों से भिन्न होते हैं और उन आकारों का स्वरूप

बालक की उम्र और उसके अनुभवों के साथ-साथ बदलता जाता है। अगर बालक की उम्र के हिसाब से अनुभव भी उपयुक्त ढंग के मिल रहे होंगे, तो उसके ये आकार भी अपनी स्वाभाविक गति से विकसित हो रहे होंगे। दूसरे ढंग से इस बात को रखें, तो कह सकते हैं कि बच्चों के चित्रों से परखा जा सकता है कि बच्चे के व्यक्तित्व का विकास स्वाभाविक और ठीक गति से हो रहा है या नहीं।

नकल के सिलसिले में ज़रा सोचकर देखिए। अगर आप बच्चे को नकल करके चित्र बनाने के लिए कहेंगे, तो उसकी अपनी अनुभूति द्वारा प्राप्त 'आकार' और उसका व्यक्तित्व, इन दोनों के बीच के संबंध का क्या होगा? नकल से बच्चे के मानस का एक अंग अप्रकट यानी अधूरा ही रह जाएगा। उसके कला-अनुभव की बात छोड़ ही दीजिए। वह उससे तो पूर्ण वंचित ही रह जाएगा।

नकल के उद्देश्य

नकल कराकर चित्रकला सिखाने की जो ख्वाहिश है, उनके पीछे यही भावना है कि बच्चा ऐसी चित्रकला सीख ले, जिसमें अनुपात आदि ठीक ढंग का और कला के व्याकरण के अनुसार हो। इसमें कोई शक नहीं कि अगर किसी को चित्रकार होना हो, तो उसे किसी-न-किसी तरह की चित्रकला की शिक्षा लेनी ही होगी। बस, फर्क यही है कि इस तरह की चित्रकला वही सीख सकता है या कर सकता है, जिसकी उम्र और मन उसके योग्य अवस्था तक पहुंच गए हों। हर व्यक्ति को और खासकर शिक्षक को यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि 'बच्चों की कला' और 'सयानों की कला' का स्वरूप और ध्येय बिल्कुल अलग-अलग हैं। सबसे मुख्य बात तो यह जान लेनी चाहिए कि 'बच्चों की कला' हर बच्चे की होती है और सयानों की कला केवल कलाकार द्वारा ही निर्मित होती है। और अगर हम चित्रकला से उस 'व्यावहारिक ड्राइंग' का मतलब लेते हों, जिसमें परिप्रेक्षण (पर्सपेक्टिव) वगैरह के नियम आते हों, तो वह केवल व्यावहारिक ड्राइंग है, जिसका व्यवहार करने की उम्र आने पर उसका सीखना भी स्वाभाविक होता है। उसे सीखने के लिए उस अवस्था पर पहुंचना पड़ता है, जिसमें रेखागणित के कम-से-कम प्राथमिक पाठ सीखे जा सकें। और वह बाल्य अवस्था के परे की ही अवस्था है। 'बच्चों की कला' में उसका कोई स्थान नहीं।

बच्चों की कला का एक ध्येय यह है कि वह उसके पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में मदद करे। कला-अनुभव बच्चे के लिए मनोवैज्ञानिक और सौंदर्य-बोध दोनों ही दृष्टि से ज़रूरी माने जाते हैं। यह कला-अनुभव हर

1

बच्चों का सृजन: एक – चार साल के बच्चे ने कूची और रंग से कागज़ पर कुछ रंग बिखेरे थे।बाद में उसने इसे 'घोड़े' का नाम दिया। इस चित्र को ध्यान से देखिए, इस में सचमुच घोड़े का आभास मिलता है। **दो** – चित्रकारी के लिए पेंसिल, ब्रश के अलावा आलू, बैंगन, करेले जैसी सब्ज़ियों के टुकड़ों या अन्य आकारों का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। साढ़े चार साल की एक बालिका ने विविध आकारों के साथ खेलते हुए इस चित्र को बनाया। बाद में इसे 'घर' कहा। **तीन** – उम्र बढ़ने के साथ-साथ बच्चा अपने चित्रों में वास्तविकता लाने की कोशिश करता जाता है। जैसे यहां 14 वर्षीय लड़के ने अपने चित्र में हिरण को सटीक बनाने की कोशिश की है। उसने हिरण की टांगों के जोड़ आदि दिखाने की कोशिश की है। बच्चों की चित्रकला की समझ रखने वाला व्यक्ति इस वास्तविक चित्रण की कोशिश में ड्राइंग की कमज़ोरियों को भांप सकता है।

बच्चे को मिलना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसका तभी उपयोग होगा, जबकि वह अनुभव स्वतंत्र आत्म प्रकटन और बच्चे के कला-गुणधर्म पर आधारित होंगे। बाहर के सिखाए हुए आकारों का इस पहलू के लिए कुछ भी अर्थ नहीं है।

बालक अगर अपनी स्वाभाविक कला-सीढ़ी पर चढ़ता रहे, तो वह खुद ही बड़ों की कला अवस्था तक पहुंच जाता है। कहा गया है कि बच्चे के मन में ये आकार उम्र और अनुभव के साथ-साथ विकसित होते जाते हैं और आखिर बाल्यावस्था पार करने के बाद किशोर-अवस्था में प्रवेश करने पर ये आकार बिल्कुल बदल जाते हैं। वे धीरे-धीरे 'वास्तविक' स्वरूप ग्रहण करने लगते हैं और आखिर ये आकार

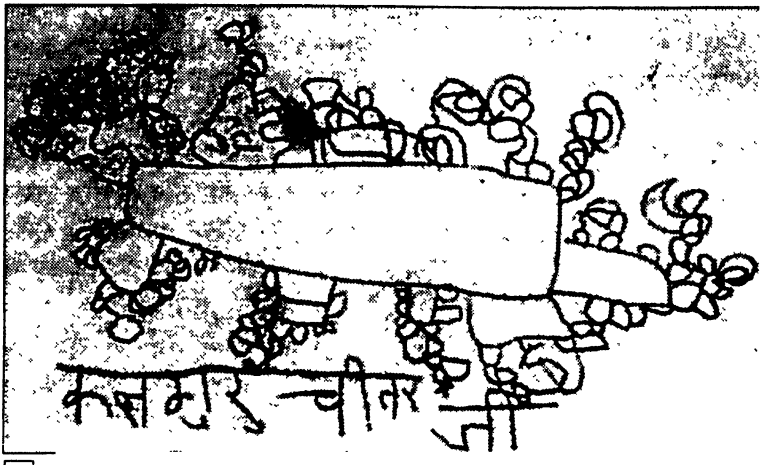

2

3

वास्तविक रूप के नज़दीक आ जाते हैं। तब 'बच्चे की कला' बदलकर 'सयानों की कला' बन जाती है।

शिक्षक यानी माली

जो शिक्षक अपने-आपको एक अच्छे माली की तरह समझते हैं, वे इस सत्य को आसानी से समझेंगे। अच्छा माली पौधों की सेवा करता है और देखता रहता है कि कहीं पौधों को कीड़ा या बीमारी तो नहीं लगी और क्या उन्हें पानी व खाद ठीक समय पर एवं ठीक मात्रा में मिल रहा है। वह कभी भी यह अपेक्षा नहीं करता कि गुलाब का जो फूल कल सुबह खिलने वाला है, वह आज और अभी ही खिल जाए। वह प्रकृति के निश्चित काल को खींच-तान करके बड़ा या छोटा करने की कोशिश नहीं करता। यही बात शिक्षक की भी है। वह बच्चे के स्वाभाविक विकास को होने दे और अपने को उस विकास के रास्ते की अड़चनों को दूर करने वाला ही समझे।

इस दृष्टि वाले शिक्षक शिक्षा-शास्त्रियों के इस कथन को कि 'बच्चे अनुकरण से सीखते हैं', ठीक रूप में लेंगे। 'बच्चे अनुकरण करते हैं' इसका अर्थ यह नहीं कि बच्चे नकलची होते हैं या बच्चे बंदर की जाति के होते हैं। बच्चे बंदर का सौंदर्य और उसका नटखटपन ज़रूर रखते हैं, लेकिन उनका विकास बंदर के नकलचीपन की तरह नहीं होता।

बच्चे हमेशा नया अनुभव लेना चाहते हैं और पुराने अनुभवों को दोहराकर पक्का कर लेना चाहते हैं। अगर उन्होंने अभी तक कोई बात देखी न हो और वह उनकी आंखों में पड़ जाए, तो वे फौरन उसे नए अनुभव के नाते खुद भी लेना चाहते हैं। वह नकल नहीं है। वह बंदर के अनुकरण जैसा नहीं है। वह तो उस कलाकार की तरह का है, जो हर चीज़ को देखता है, अध्ययन करता है और फिर निर्माण करता है। बच्चे अनुकरण करते हैं, इसका अर्थ हमें इसी माने में समझना चाहिए। बच्चे अध्ययन करते हैं, परख करते हैं, स्वयं अनुभव करना चाहते हैं।

देवी प्रसाद: शिक्षाविद व कलाविद। रवीन्द्रनाथ के स्कूल शान्तिनिकेतन से स्नातक की उपाधि ली। सेवाग्राम की आनंद-निकेतन शाला में कला विशेषज्ञ के रूप में कार्य करते हुए देवी प्रमाद जी ने बालकों के साथ हुए अपने अनुभवों के आधार पर सन् 1958 में एक पुस्तक तैयार की – 'शिक्षा का वाहन कला'। नेशनल बुक ट्रस्ट ने 1999 में इसे हिन्दी में प्रकाशित किया (पृष्ठ 138, मूल्य 50 रुपए)। उपरोक्त लेख इसी पुस्तक से लिया गया है।